SANSKRUTI INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

Journal homepage: http://www.simrj.org.in Journal UOI: 1.01/simrj

समय के साथ दो हाथ करते 'महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर'

प्रा. डॉ डी. पी. जाधव

विभाग प्रमुख एवं सहा. प्राध्यापकए हिंदी विभाग, वेणूताई चव्हाण कॉलेज, कराड

dipakjadhav.hindi@gmail.com

सारांश :

बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर एक ऐसे बोधिवृक्ष है, जो अपनी जडों को अपने ही खून से सींचते रहे। अपनी आँखों से उसका विस्तार एवं विकास देखत रहे। उस वटवृक्ष के आश्रय में आए आपने – पराए सभी को मात्र उसने षितलता दी। बदले में दूआ मिली या गाली, ये सोचने के लिए उनके पास समय ही कहाँ था! समरांगण में कार्य ही उनका हथियार रहा और परिचय भी। वे शत्रु को परास्त करते थे लेकिन विचारों की अदभूत शक्ति से। वे ऐसे महानायक हैं जिन्होंने न केवल विरोधियों पर बल्कि स्थितियों पर भी विजय हासिल की।

बीजशब्द: *महानायक, संविधान, गोलमेज परिषद, पुना पॅक्ट, अस्पृश्य,*

सदि के महानायक और विष्व विद्वत् व्यक्तित्व बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर भारत भू के अंधःकार को मिटाने वाला ऐसा प्रकाष पुँज है, जिसके आलोक में अपने तो क्या उनके विरोधी भी स्वयं को महफूज एवं सूरक्षित पाते हैं। बाबा साहेब दलित समाज की संजीवनी है, उनके तारणहार है। वे भारत भू को धर्म और जाति की नरकीय स्थिति से बाहर निकलने का रास्ता दिखाने वाले पथदर्षक है। अपने – अपने खमों में सीमटेः सड रहे, गल रहे, भारतीय विषमताधारित समाज को समता, न्याय, बंधूता के राह पर ले जाने वाले बाबा साहेब आधुनिक भारत के मिनार की नीव भी है और कलष भी। मनुष्य द्वारा मनुष्य से पषूवत व्यवहार करने के आदी भारतीय समाज व्यवस्था, धर्म व्यवस्था, जाति व्यवस्था को ठोक – पीठ ठीक करने का कार्य वे अंतिम सांस तक करते रहे ताकि भारत लंबे समय तक एक देष के रूप अक्षुण्ण रहें।

मोहनदास नैमिषराय द्वारा लिखित, धम्म चैरिटेबल ट्रस्ट से प्रकाषित बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के जीवन पर लिखा गया हिंदी का प्रथम दलित ऐतिहासिक उपन्यास 'महानायक बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर' समय, समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति तथा मानव स्थितियों को भलि भाँति आँकते हुए युग सत्य को व्याख्यायित करता है। उपन्यास समाज में फैली कई गलत धारणाओं के तथ्यात्मक समाधान प्रस्तुत करता है। इतिहस की सुक्ष्मादिसुक्ष्म घटनाओं की एहमियत समझते हुए लेखक ने स्थान एवं तिथि के साथ उसे प्रस्तुत किया है। डॉ. आंबेडकर के चरित्र की पहचान करानेवाला प्रस्तुत उन्यास, उनके जीवन चरित्र की कई बारकियों को पाठकों के समुख

रखता है। घटनाओं की समयसापेक्ष व्याख्या से उपन्यास सराहनीय बना है। रचना की खासियत है – तथ्यों की सप्रमाण विष्वसनीय प्रस्तुति।

डॉ. आंबेडकर को लेकर इतिहास और जनमानस में कई अवास्तविक धारणाएँ है। उपन्यास ऐसे तथ्य प्रस्तुत करता है जिनके चलते ये धारणाएँ अपने आप टूट जाती है। उनम सें एक है– बाबा साहेब को असफल वकालतकार कहा जाना। किंतु उनके वकालत के ऐसे कारनामें नैमिषराय ने पेष किए है, जो केवल बाबासाहेब ही कर पाते। उस समय वे एकमात्र दलित समाज के व्यक्ति थे, जो वकालत कर रहे थे। 'हरिसिंह गौड के सवाल के जवाब में बाबा साहेब स्वयं यह बात स्वीकार करतें हैं।'[1] इसी के साथ लेखक ने उन स्थितियों पर भी प्रकाष डाला है, जिस कारण काबिल होने के बावजूद बाबा साहेब को वकालत का अधिक काम नहीं मिल पाया।

नैमिषराय ने इस जीवनीपरक उपन्यास में बाबासाहेब के मुख्यतः राजनीतिक –सामाजिक व्यक्तित्व को चित्रित किया है। विलायत गमन से महापरिनिर्वाण तक के जीवन को उपन्यास का उपजीव्य बनाया गया है। विलायत जाने की त्रासदी, वहाँ की जद्दोजहद, षिक्षा प्राप्ति की प्रबल इच्छा, अध्ययन वृत्ति, ज्ञानक्षुधा, अभाव आदि स्थितियों को बडी बारिकी से चित्रित किया है। बाबासाहेब का ग्रंथ प्रेम और उसके पूर्ती की अपार कष्टसाध्यता देखते ही बनती है। भूके रहकर किताबें खोजना, घंटों किताबों की खोज में पैदल घुमना, जरूरी आवष्यकताओं के पैसों से किताबें खरीदना, आज के युवा वर्ग के सामने एक प्रेरक तत्व के रूप में उभरता है।

भारत की ओर से तीनों गोलमेज परिषदों में सम्मिलित होनेवाले मनिषियों में बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर एक थे और यह उनके विद्वत्ता का करिष्मा था। इतना ही नहीं अन्य सदस्य भी बाबा साहेब की विद्वत्ता का लोहा मानते थे। दुसरी गोलमेज परिषद में अंग्रेजों की कुटनीति के झांसे में स्वयं गांधी जी भी बुरी तरह फसें थे और वे 'प्रांतीय स्वायत्तता' को स्वीकारने के पक्ष में थे किंतु अंग्रेजों की कुटनीति का भंडाफोड बाबा साहेब, आगा खान एवं तेजबहाद्दूर सप्रू ने कर देष को अनिष्ट से बचाया। इतिहास के इस तथ्य पर उपन्यास प्रकाष डालता है ।

गांधी – आंबेडकर प्रसंग में निष्पक्षता से, संयत वाणी में तथ्यों को बयान करना, मोहनदास नैनिषराय की बहुत बडी सफलता है। सामान्य रूप से हम पाते हैं कि गांधी –आंबेडकर प्रसंग में लेखक उद्वेलित हो जाता है। वह आंबेडकरवादी हो तो गांधी के प्रति की अपनी भडास निकालता है और गांधीवादी हो तो स्थितियों का उदारिकरण करता है। किंतु नैमिषराय इस तथ्य को जिस संयम, श्रद्धा से प्रस्तुत करते हैं, वह काबिले तारिफ है। तथ्य के साथ कहीं छेड – छाड नहीं, कहीं लोभ या तिरस्कार नहीं बल्कि वे तथ्य को तथ्य के रूप में प्रस्तुत कर सोचने – समझने की जिम्मेदारी पाठकों पर छोडते हैं। निष्पक्षता से लिखना जहाँ आसान नहीं था, ऐसी जगहों पर भी नैमिषराय ने कमाल का संयम बरता है।

गांधी – आंबेडकर में मतभेद थे, मनभेद नहीं। समाज सुधार के कई मसलों पर उनकी चर्चाएँ हुई लेकिन दोनों की प्राथमिकताओं में अंतर था, गति में अंतर था, गंभीरता में अंतर था,

समझ में अंतर था, भूक्त भोगी में अंतर था। इसी कारण वे मुसलमान और सेखों द्वारा मांगे गए विशेष प्रतिनिधित्व को स्वीकार करणे के लिए तयार थे लेकिन इसी बात को लेकर अस्पृशों के प्रतिनिधियों से झगडने लगे, ''क्या अस्पृश्य सदा–सर्वदा अस्पृश्य रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहें इससे तो कहीं अधिक मैं यह चाहुंगा कि हिंदू धर्म समाप्त हो जाए। अतः मैं पूरा सम्मान देता हूं डा. अम्बेडकर को िकवह अस्पृश्यों का उत्थान पाहते हैं। मैं उनकी योग्यता को पूरा सम्मान देता हूं, पर पूर्ण विनम्रता मैं यह कहना ही चाहूंगा कि एक महान अन्याय की चक्की में वह पिसे हैं और संभवतः जो कटु अनुभव उन्हें हुए हैं, उनके कारण फिलहाल वह गुमराह हो गए हैं। यह कहते हुए मुझे पीडा होती है लेकिन यदि मैं ऐसा न कहूं तो अपने प्राणों के समान प्रिय अस्पृश्यों के हित के प्रति मैं इमानदार नहीं रहूंगा।''[2] इसी का परिणाम था – दुःखद पुणे करार। इतिहास इसे गांधी की हठधर्मिता कहे या आंबेडकर की अलगावता किंतु दलित समाज के लिए यह बडा ही –षडयंत्रकारी साबित हुआ। देष में आम लोगों की हत्याएँ न हो, दंगे न हो, देष की अखंडता बाधित न हो इसलिए बाबा साहेब ने अनिच्छा से 'पूना पॅक्ट' पर हस्ताक्षर किए और इसके दृश्य और दुष्परिणाम भी उन्होंने स्वयं 1952 एवं 1954 के चुनावों में देखे और भोगे।

ठीक, 'पूना पैक्ट' के जैसी ही स्थिति हिंदू – मुस्लिम बटवारे में उपस्थित हुई थी। गांधीजी नहीं चाहते थे कि पाकिस्तान बने और हिंदू– मुस्लिम अलग हो। जब कॉंग्रेस ने भी उनकी बात नहीं सूनी तो उन्होंने घोषणा की कि मेरी मुत्यू की कीमत पर ही बटवारा होगा। वे प्राणांतिक अनशन करने बैठ गए, किसी ने उनकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया। बल्कि 'गांधी मरता है तो मरने दो' कह कार्यवाही जारी रखी। गांधी जी को अपना अनशन तोडना पडा। डॉ अम्बेडकर इस प्रकार की नासमझी नहीं दिखा पाए। दिखाते तो गांधी जी अनशन छोडते या मरते, लेकिन मरते तो क्या बटवारें के समय हुआ नरसंहार देष में नहीं होता? देष में निरापराध दलितों की हत्याएँ नहीं की जाती? धर्मांध, सत्तांध, अविवेकी सवर्ण समाज अपनी हिंसक वृत्ति, दलितों के खून से तृप्त नहीं करता? इतिहास को लेकर कई ऐसे सवाल है जिनके जवाब ढूँढने में उपन्यास सहायक बनता है।

भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता एवं समाज सुधार के लिए कार्यरत कई संस्थाओं का उल्लेख मिलता है किंतु उनमें किसी ऐसे संगठन या संस्था का नाम हम शायद ही पाते हैं जिसका संबंध दलित समाज से हो। स्वतंत्रता प्राप्ति एवं समाज सुधार की ज्वाला पुरे भारत में धधक रही थी। इससे कोई भी क्षेत्र, समाज अछूता नहीं था। फिर दलित कहाँ थे? क्या उनके भी संगठन थे, संस्थाए थी, वे किन्हीं संगठनों में योगदान दे रहें थे? जो स्वतंत्रता प्राप्ति एवं समाज सुधार में संलग्न थी। थी, तो फिर इनका नाम मात्र उल्लेख भी स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में कहीं – क्यों नहीं मिलता? इस सवाल के जवाब के साथ ही नैनिषराय स्वतंत्रता संग्राम से जूडी दलित संस्थाओं के नाम, कार्य एवं वे देष के किस हिस्से में कार्यरत थी, इसका पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं।

जाति व्यवस्था भारतीय समाज व्यवस्था का ऐसा कोढ है, जिसे जितना दबाना चाहे वह कहीं न कहीं से प्रकट हो ही जाता है। जाति भारतीय समाज की मानसिकता है, '' जाति का

सवाल भारतीय समाज में पिस्सू की तरह पिचका हूआ है, भारत के किसी भी कोने में चले जाओ यह सवाल साये की तरह आपसे चिपका रहता है। आपकी पहचान जन्मगत जाति से होती है।''[3] रजनी तिलक की यह बात जाति के उदारीकरण की धारणा को बेनकाब करती है। भारतीय समाज सुधार में सवर्ण समाज की मानसिकता और भुमिका पर बाबा साहेब संविधान सभा में कहते हैं, '' दुर्भाग्य से इस मामले में मेरे अनुभव बहुत कटु है। दलित वर्गों को उनकी कतिपय अस्वच्छ आदतों के कारण पास नहीं फटकने दिया जाता। यही इल्जाम उँची जाति के लोग लगाते हैं। कहा जाता है कि दलित वर्गों के लोग मृत पशुओं का मांस खाते हैं और वे साफ–सुथरे नहीं रहते। पिछले दो वर्षों में मैंने इस प्रेसिडेंसी में मैंने दलित वर्गों को साफ–सुथरा रहने और गंदी आदतों को छोडने हेतु उन्हें राजी करने के लिए एक अभियान आरंभ किया। यह मेरा दुर्भाग्य था कि सारे सवर्ण हिंदू मेरे विरूद्ध हो गए, जब कि ऐसे मामले में मैं उनसे पूरे सहयोग की अपेक्षा कर रहा था।''[4]

लोगों में यह धारणा है कि संविधान निर्माण प्रक्रिया में बाबा साहेब की षिरकत कॉंग्रेस की मेहरबानी से हुई जब कि इतिहास कुछ अलग ही तथ्य प्रस्तुत करता है। कानून निर्माण की प्रक्रिया आजादी के पूर्व यानी नवंबर 1933 की संयुक्त समिती के गठन से ही आरंभ होती है। दूसरी गोलमेज परिषद में ही बाबा साहेब को 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' में स्थान दिया गया था। शुरू से ही डॉ. अम्बेडकर का इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सन 1946 के चुनाव में हारने के बावजूद जोगेंद्रनाथ मंडल तथा उनके अन्य दलित विधायकों के समर्थन से बाबा साहेब संविधान सभा में दाखिल हुए। संविधान सभा में बने रहने के लिए उन्हें बंगाल प्रांत से जीत कर आना पडा। एक इसका अपना स्वतंत्र इतिहास है।

भारतीय कट्टर हिंदूओं ने बाबा साहेब को देषद्रोही करार देने में कोई कसर नहीं छोडी लेकिन संविधान सभा में दिए गए उनके कई भाषणों ने देष की ओर देखने के उनके नजरिए को स्पष्ट किया है। अन्य देष भक्त जहाँ पहले हिंदू या मुसलमान हुआ करते थे, वहाँ बाबा साहेब पहले और अंत में मात्र भारतीय थे। समाज, राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्र की अखंडता पर संविधान सभा में उनके विचार सुन, उनके आलोचक आचार्य अत्रे, भोपटकर, रामचंद्र तटणीस जैसे कट्टर हिंदूत्ववादियों ने भी उनकी तारिफ की। आचार्य प्र. के. अत्रे ने तो बाबा साहेब के निर्वाण पर ' भारत का उद्धारकर्ता महात्मा डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर' शीर्षक से 'मराठा' वृत्तपत्र में दीर्घ लेख लिखकर श्रद्धांजलि अर्पित की।

आजादी से पूर्व और आजादी के बाद भी बाबा साहेब को सनातनियों के विकृति का षिकार होना पडा। गोलमेज परिषदों में उनके स्थान को लेकर बवाल उठाया, उनसे असहकार, विलायत से लौटने पर रहने के लिए घर की व्यवस्था तक न होने देना, योग्यता होने के बावजूद उचित अवसर न देना, उनके आंदोलनों का दुष्प्रचार करना, आंदोलनों में शरिक दलितों की पीटाई करना, सभाओं पर पथराव करना, .. क्या नहीं हुआ बाबा साहेब के साथ? ..... क्या ..... क्या नहीं सहा बाबा साहेब ने? इसके बावजूद वे विष्व में देष की प्रतीमा को सुधारने के लिए प्राणप्रण से जुटे रहे। धर्म और

धर्म की आवश्यकता को लेकर उनके विचार स्पष्ट थे, '' मनुष्य मात्र की उन्नति के लिए धर्म की आवश्यकता है। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि कार्ल मार्क्स के सिद्धतों से एक नया मत निकला है। उनके कथानुसार धर्म में कुछ भी नहीं है। उनके लिए धर्म का कोई महत्व नहीं है। उनका धर्म केवल यह है कि उन्हें प्रातः काल मक्खन लगे हुए टोस्ट, दोपहर में खाने के लिए स्वादिष्ट भोजन, सोने के लिए अच्छा बिस्तरा और देखने के लिए सिनेमा चाहिए, यही उनका तत्वज्ञान है। मैं ऐसे तत्वज्ञान का हामी नहीं हूँ।''[5] उनके बौद्ध धर्म स्वीकार की घोषणा ने देष की अखंडता को बरकरार रखा, अन्यथा उनके सामने प्रलोभनों की कमी न थी। वे कच्चे मिट्टी के होते तो आज देष का रंग – रूप ही कुछ और होता। विरोध और धर्मांध की इन त्रासद, विगलित, पीडादायक स्थितियों में भी बाबा साहेब अटल रहे क्योंकि वे जानते थे, ' महामेरू के बगैर अमृत मंथन संभव नहीं होगा।'

'महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर' तथ्यों और घटनाओं की ऐसी श्रृंखला पेष करता है, जिसे इतिहास की गहरी खाई में दबोचा रखा गया था। निष्चित रूप से नैमिषराय जी के गहन अध्ययन से प्रस्तुत उपन्यास सृजित होआ है। समय और संदर्भ की व्याख्या करने वाला यह उपन्यास सभी भारतीयों को एक बार तो पढना ही चाहिए। बाबा साहेब डॉ आंबेडकर के जीवन संघर्ष का परिचायक प्रस्तुत उपन्यास मात्र पाठ्य न होकर हर घर के लिए संग्राह्य है। स्त्री जीवन की दासता, मजदूरों की व्यथा, किसानों का खस्ताहाल जीवन, दलितों का उत्थान, भारतीय समाज का त्रुटि शोधन, धर्म की सामाजिक आवश्यकता और उसका पाखंड, देश की अखंडता के महत्त कठीन कार्य के लिए वे अंतिम समय तक एक जुझारू योद्धा की तरह लडते रहे और भारतीय होने के अपनी प्रतिबद्धता का निर्वाह करते रहें।

संदर्भः

1. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय, खंड–4 – प्र. संपादक डॉ. श्याम सिंह शशि, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भा. स., नई दिल्ली–01 पृ. 208
2. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय, खंड–10 – प्र. संपादक डॉ. श्याम सिंह शशि, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भा. स., नई दिल्ली–01, पृ. 232–233
3. अम्बेडकरवादी स्त्री–चिंतन– संपादक तेज सिंह, स्वराज प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–02, पृ. 108
4. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय, खंड–4 – प्र. संपादक डॉ. श्याम सिंह शशि, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भा. स., नई दिल्ली–01 पृ. 211–212
5. बयान– संपादक मोहनदास नैमिशराय, सम्यक प्रकाशक, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली– 63 पृ. 09